विपश्यना-पद्धति

[जीवन-शोधन की सहज व्यावहारिक प्रक्रिया]

प्रकाशक :

समन्वय आश्रम

बोधगया, बिहार

परिचय

सतिपट्ठान या स्मृत्युपस्थान का अर्थ है, सतत जागरूक रहने का अभ्यास। निरन्तर अप्रमाद रहकर सति-भावना करने पर शनैः शनैः साधक की अन्तर्दृष्टि या प्रज्ञा-चक्षु खुल जाती है। उस प्रज्ञा-चक्षु के द्वारा साधक प्रज्ञप्ति समतिक्रम कर नाम-रूप-पंचस्कन्ध का यथाभूत अनित्य-दुःख-अनात्म स्वभाव को दर्शन करने लगते है। इस तरह अपने स्वरूप के यथाभूत दर्शन करने को विपस्सना = विपश्यना या विदर्शन कहते है। इसे बढाना ही सतिपट्ठान-विपस्सना-भावना कहा जाता है। यह तत्काल फलदायक है, कालान्तर में नहीं, यह यही दिखाई देनेवाला है, यह भावना निर्वाण तक पहुंचानेवाला है, और साधक इसे अभ्यास कर यही 'निर्वाणिक शान्ति' स्वयं प्रत्यक्ष उपलब्धि कर सकते हैं।

सतिपट्ठान-विपस्सना-भावना की आधारशिला है सूत्र-पिटक के अन्तर्गत दीघनिकाय का महासतिपट्ठान सूत्र—जो शान्ति-प्रार्थी जिज्ञासु साधको के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। केवल 'महासतिपट्ठानसूत्र' को पढकर, इस विषय के अभिज्ञ आचार्य के निर्देशन के बिना, 'सतिपट्ठान' का अभ्यास कर नवीन साधकों का सफलकाम होना अतीव कठिन है। नवीन विपश्यना-साधकों की कठिनाई को ध्यान में रखकर, सति या जागरूकता का सतत अभ्यास कर उसे कैसे सबल और सफल बनाया जाय उसी की क्रमिक व्यावहारिक शिक्षा संक्षेप में प्रस्तुत पुस्तिका में दी गई है।

विदर्शन-भावना के द्वारा साधक अप्रमत्त हो अपने शरीर और मन के विषय में सतत जागरूक रहकर अपने चित्त को विशुद्ध, निर्मल और निर्विकार बनाकर, समाधि प्राप्तकर,

'परम सत्य' का साक्षात्कार कर सकते है। सतिपट्ठान भावना के विषय में भगवान बुद्ध कहते है :—'भिक्षुओं ! प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक-सन्ताप से छूटने के लिए, दुःख-दौर्मनस्य का नाश करने के लिए, लोकोत्तर मार्ग के अधिगम के लिए और निर्वाण-मुक्ति के साक्षात्कार के लिए—यह एक अकेला मार्ग है।'

सतिपट्ठान-विपस्सना-भावना के चार आलम्बन या आधार है :—(१) कायानुपश्यना भावना—;याने स्मृत्युपस्थान के साधक अपने शरीर के विषय में, शरीर की प्रत्येक क्रिया का जागरूक रहकर सम्पादन करते हैं।

(२) वेदनानुपश्यना भावना—सुख-दुःख आदि वेदनाओं के अनुभव करने के समय साधक अति सावधानी से निरन्तर जागरूक रहकर सुख-दुःखादि वेदनाओं की भावना करते है। सुख-वेदना की स्पृहा या दुःख-वेदना से वे कातर नही होते है।

(३) चित्तानुपश्यना-भावना—राग, द्वेष, मोह या कोई भी विकार यदि मन में उठे तो विपश्यना-साधक तुरंत सचेत हो जाते है। इस तरह जागरूक रहने से वे विकार स्वयं ही नष्ट हो जाते है।

(४) धर्मानुपश्यना भावना—धर्म्म या कुशलाकुशल चित्त-वृत्तियां जो भी मनमें उठती है, विपश्यना-साधक के सतत जागरूक रहने के कारण कामुकता, द्रोह-आदि अकुशल चित्त-वृत्तियां स्वतः विलीन हो जाती है और श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा प्रभृति कुशल वृत्तियां बढ़ती है।

सारे त्रिपिटक का सार अप्रमाद या स्मृत्युपस्थान है।

इसी में शमथ-विपश्यना और शील-समाधि-प्रज्ञा समाहित है। इस लिए अन्तिम-शय्या पर लेटे भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को 'सारे संस्कार नश्वर है, अप्रमाद के साथ इस धर्म्म का सम्पादन करो'—कहकर अन्तिम उपदेश दिया था। 'अप्पमादं अमतं पदं'—अप्रमाद अमृत-पद है।

द्वितीय महासमर के बाद से भारत के पड़ोसी देश ब्रह्मदेश में सतिपट्ठान-विपस्सना-भावना का काफी प्रचार और प्रसार हुआ है। इसके अभ्यास के लिए समग्र ब्रह्मदेश में अनेकानेक विपश्यना-भावना-आश्रम और सतिपट्ठान-भावना-केन्द्र बहुत से आचार्यों ने स्थापित किये है। इन भावना-आश्रमों में बच्चों से लेकर वृद्ध तक विपश्यना का नियमित व्यावहारिक शिक्षाक्रम लेने के लिए जाते है। अभ्यास करने वालों में स्त्री-पुरुष, भिक्षु-प्रव्रजित, उपासक-उपासिकायें प्रभृति सब स्तर के आदमी सम्मिलित है।

रंगुन-नगर के सन्निकट 'शासन-हित-आश्रम' एक अति प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रिय-विपश्यना-भावना केन्द्र है। इस आश्रम का सर्वप्रधान कर्मस्थान तथा विपश्यना-आचार्य व गुरु है—अग्रमहापण्डित भदन्त शोभन महाथेर—जो देश-विदेश में 'महासी सयाडो' नाम से प्रख्यात है। स्मृत्युपस्थान-विपश्यना भावना की सैद्धान्तिक जानकारी और व्यावहारिक अभ्यास के लिए ब्रह्मभाषा में उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी है। उस आश्रम में विपश्यना-ट्रेनिग कोर्स लेने के लिए विदेशों से भी अनेक लोग आते हैं। उनकी सहायता के लिए अंग्रेजी में कई एक विपश्यना का व्यावहारिक ट्रेनिग-कोर्स की पुस्तकें आश्रम

की ओर से निकाली गई है। उन पुस्तकों में से प्रस्तुत पुस्तिका "Practical Basic Exercises in Satipatthana Vipassana Meditation" का ही हिन्दी संस्करण है।

हिन्दी-जगत में विपश्यना-भावना के व्यावहारिक अभ्यास के लिए अबतक कोई पुस्तक उपलब्ध नही है। मगध-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान रीडर (हिन्दी) डा० श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', एम० ए०, पी-एच-डी०, ने अत्यन्त आदर और श्रद्धा के साथ सर्वप्रथम इस पुस्तिका का हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी-जगत का बड़ा उपकार किया है। गया के प्रसिद्ध धर्म्मपरायण सेठ श्री गंगाधर डालमिया जी ने सर्व साधारण के हित के लिए इसको छपवाकर 'धर्म्मदान सर्वोत्तम दान है'—का आदर्श स्थापन किया है। श्री माधव जी इसका हिन्दी-अनुवाद कर और श्री डालमिया जी इसे छपवाकर महान् पुण्य के भागी हुये है। मेरी प्रार्थना है, इस पुण्यानुभाव से वे सुखी, निरामय व दीर्घजीवी होकर अन्त में 'परम शान्ति' निर्वाण का अधिकारी हो।

अप्रमाद की शिक्षा या सक्रिय विदर्शन भावना जीवन में उतारने के लिए यह छोटी-सी व्यावहारिक पुस्तिका बहुतों के लिए सहायक और हित-सुखावह हो, यह मेरी आन्तरिक शुभ-कामना है।

सब प्राणी सुखी हों।

आश्विनी पूर्णिमा
समन्वय-आश्रम
बुद्धगया
सन् १९६६

अनागारिक मुनीन्द्र
कर्मस्थान तथा विपश्यना-आचार्य

विपश्यना-भावना

विपश्यना-भावना की तैयारी

जो भी व्यक्ति निष्ठापूर्वक ध्यान में बैठना चाहता है और अन्तर्दृष्टि (विपश्यना-ज्ञान) प्राप्त करना चाहता है उनके लिए उचित है कि प्रशिक्षण काल में सासारिक विचारों और क्रियाओं से छुट्टी ले ले। उसे 'शील' का पालन करना चाहिए। 'पञ्चशील' में अहिंसा, सत्य, अस्त्येय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह मुख्य है। ध्यान में प्रवेश कर विपस्सना ज्ञान के लिए शील सदाचार सद्‌विचार का महत्वपूर्ण स्थान है। साधक को इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास रखना चाहिए कि उसके सदाचार एवं सद्विचार तथा शील द्वारा उसे 'अन्तर्दृष्टि' अवश्य प्राप्त होगी। यदि साधक द्वारा कभी किसी महापुरुष का अपमान हो गया हो तो उसे तुरन्त निश्छल भाव से क्षमा मॉगनी चाहिए। ध्यान मे बैठने के पहले त्रिशरण या अपने इष्टदेव का मन ही मन स्मरण करना चाहिए ताकि भावना में यदि कोई अपावन, अशोभन दृश्य आ जायँ तो उन से वह कदापि भयभीत नहीं होगा। किसी भी स्थिति में बाहरी प्रभावों से विचलित नही होगा।

दूसरी बात ध्यातव्य यह है कि साधक अपने आचार्य के प्रति आस्थावान् होगा, अनुगत होगा। इसका लाभ यह होगा कि वह अपनी कठिनाइयों को अपने आचार्य के सम्मुख निःसंकोच भाव से रख सकेगा और आचार्य उसकी शंकाओ का

समाधान करते रहेंगे और उसे ध्यान के मार्ग पर सदा अग्रसर होने में प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहेंगे, आवश्यकतानुसार समय-समय पर आदेश प्रदान करते रहेंगे।

निर्वाण (मुक्ति) परम मङ्गलमयी है। उसे प्राप्त करने का मार्ग भी मङ्गलमय ही है। विपस्सना का साधक निश्चय ही मार्ग-ज्ञान और निर्वाण को संसिद्ध कर लेगा। अस्तु इस पथ के पथिक का अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति मे पूर्ण विश्वास होना चाहिए। जिन लोगों ने निर्वाण प्राप्त किया, उन सब को इसी साधना से गुजरना ही पड़ा। अस्तु साधक, के लिए यह परम सौभाग्य का विषय है कि वह इस साधनमार्ग का अनुसरण कर रहा है। विपस्सना-ज्ञान की साधना आरम्भ करने के पूर्व भगवान का ध्यान करना चाहिए।

साधक चाहें तो भगवान बुद्ध के नौ मङ्गलमय विशिष्ट गुणों का भी अनुस्मरण कर सकते हैं। वे नौ गुण है—भगवान बुद्ध परम पवित्र है, परमसंप्राज्ञ है, ज्ञान और आचरण में पूर्णतम हैं, कल्याण स्वरूप है, विश्व के ज्ञाता है, मनुष्य को सत्पथ पर चलाने में परम कुशल सारथी है, देवताओ और मानवमात्र के गुरु है, संबुद्ध और महामहिमामय है। तब साधक अपनी मैत्रीभावना विश्वभर के प्राणियों में वितरित कर दे, सब के प्रति अगाध करुणा का भाव ले आवे। यदि सभव हो तो शरीर की क्षणभंगुरता और मृत्यु के आकस्मिक आक्रमण पर भी विचार करे।

अब साधक सुखासन से बैठ जाय—जिस आसन में देर तक, विना कष्ट पाये और बार-बार आसन बदले विना बैठा जाय

वही आसन ठीक है। एक पैर पर दूसरा पैर रखने से दबाव के कारण गर्मी होती है और फिर बैठने में कष्ट का अनुभव होने लगता है अस्तु दोनों पैरों को थोड़ा अलग-अलग रखा जाय तो देर तक सुखपूर्वक बैठने में सुविधा का अनुभव होता है। जिन्हें जमीन पर बैठने का अभ्यास नहीं है वे अपनी सुविधानुसार आसन पर बैठ सकते है। अब साधक ध्यान का अभ्यास आरम्भ करें।

अभ्यास का आरम्भ

साधक अपना ध्यान श्वास-प्रश्वास पर ले जाय अथवा सॉस लेने से पेट ऊपर की ओर उठता है और छोड़ते समय नीचे बैठता है उस पर ध्यान ले जाय। यदि आरंभ में उठने और गिरने की क्रिया का ठीक-ठीक यथावत आभास न मिल सके तो पेट पर एक हाथ या दोनों हाथ रख देने से वह क्रिया स्पष्ट हो जायगी कि सास लेने से पेट उठता और सांस छोड़ देने से पेट गिरता है। अब वह पेट के उठने और गिरने पर ध्यान को केन्द्रित करे। साधक के लिए ध्यान में सति (स्मृति), समाधि और ज्ञान को उदबुद्ध करने के लिए यह अत्यन्त सरल और परम सहायक क्रिया है। जैसे अभ्यास बढ़ता जायेगा, श्वास-प्रश्वास के आने जाने अथवा पेट के उठने गिरने का आभास सहज होता जायगा।

'विपस्सना' (अन्तर्दृष्टि) का अभ्यास जैसे जैसे बढ़ता जायगा साधक अपने छहों इन्द्रिय-द्वारों पर नाम-रूप के बार बार उत्पत्ति-विलय को ठीक ठीक पकड सकेगा। आरम्भ में साधक

के लिए, जिसकी 'सति' और समाधि अभी अपरिपक्क है नाम और रूप के प्रत्येक उदय-व्यय को ज्यों का त्यों और ठीक तत्काल ही तत्काल पकड़ पाना कठिन प्रतीत होगा। आरम्भ में तो वह समझ ही नही पायेगा कि छहो इन्द्रिय-द्वारों पर सजग और सावधान रहकर, अप्रमत्त रहकर नाम और रूप को कैसे पकड़ा जाय। परन्तु श्वास-प्रश्वास के आने जाने की क्रिया तो स्वयमेव निरन्तर चल ही रही है, उसे खोजने के लिए कही बाहर भटकना नही है। अतएव साधक सुस्थिर चित्त से श्वास के आने जाने या पेट के उठने और गिरने की क्रिया पर ध्यान रखे और खूब गहराई से वह ध्यान से देखता रहे। हाँ, आना जाना या 'उठा और गिरा, उठा और गिरा' पर ध्यान तो रहे, परन्तु इन शब्दों को मुख से उच्चारण करने की कतई आवश्यकता नहीं है। श्वास-प्रश्वास को या पेट के उठने और गिरने की क्रिया को अधिक जाग्रत या बलवती बनाने के लिए जोर-जोर से साँस लेने की भी कतई आवश्यकता नहीं है। यदि साधक जोर-जोर से जल्दी-जल्दी साँस लेने लगेगा तो वह तुरन्त थक जायेगा। इसलिए आवश्यक है कि साधक सहज रूप में ही श्वास-प्रश्वास की छन्दमय गति या पेट के उठने और गिरने पर ध्यान रखे।

इस प्रकार जब साधक साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर अपना ध्यान जमाये हुए है, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि उसके सकल्प, संस्कार, इच्छाएँ, विचार, विभाव, कल्पनाएँ भीड़ लगा दें। इन मानसिक क्रियाओ की अवहेलना नहीं की जा सकती। वे जैसे ही आवें तुरन्त उसी क्षण उन्हें

अवलोकन कर लेना चाहिए, मन ही मन उन्हें देख लेना चाहिए। बस देखने मात्र से वे ढह या गल जायेंगी बशर्ते कि साधक उन में उलझे नहीं। सतत जागरूकता और सावधानी ही इस साधना का प्राण है।

उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि आप भावना में बैठे हुए है और साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान लगाये हुए है, उसी समय कोई 'कल्पना' आई—तत्काल मन ही मन 'कल्पना आई', 'कल्पना आई' देखे, कोई 'विचार' आया तो मन ही मन 'विचार आया' 'विचार आया' नोट करे, यदि 'चिन्तन' आया तो मन ही मन नोट करें, चिन्तन आया, चिन्तन आया, कोई इच्छा जगी तो मन ही मन नोट करें, इच्छा जगी, इच्छा जगी, किसी प्रश्न की गुत्थी में समझ आते हुए समझ आयी, समझ आयी, मन ही मन अवलोकन करे। उन में उलझें नहीं। मै विचार कर रहा हूँ, मै कल्पना कर रहा हूँ, मै इच्छा कर रहा हूँ—ऐसा नहीं। उसमें अपने 'मै' को मत सानिये। मेरी कल्पना, मेरा विचार, मेरी इच्छा, मेरी समझ—ऐसा भी नही। 'मै' और 'मेरा' इस प्रक्रिया में उलझें नही, फँसे नहीं। तटस्थ हो कर आनेवाले विचार, कल्पना, इच्छा, संकल्प को देखते रहें और मन ही मन उनके आने को नोट करते रहें। नोट करते ही वे या तो ढह कर या गल कर स्वयमेव गायब हो जायेंगे और आप अपने साधन-पथ पर निश्चिन्त निरापद, बेखटके बढते जायगे। ध्यान करते समय यदि आप देखते है कि आपका मन बाहर चक्कर लगाने निकल गया है तो मन ही मन नोट कर लें—चक्कर लगा

रहा है, चक्कर लगा रहा है, यदि कहीं जा रहा है तो जा रहा है, जा रहा है, पहुंच रहा है तो नोट कीजिए पहुँच रहा है, पहुँच रहा है. किसी व्यक्ति से मिल रहा है तो मिल रहा है, मिल रहा है, उससे बातें कर रहा है तो बोल रहा है, बोल रहा है, बहस कर रहा है तो बहस कर रहा है, बहस कर रहा है। यदि ध्यान में कोई दृश्य, कोई ज्योति, कोई रंग दिखायी पड़े तो दीख रहा है, दीख रहा है। ऐसे मानसिक दृश्यों को तबतक बार बार मन ही मन देखते रहें जब तक कि वह बिला न जाय। उनके बिला जाने पर फिर साँसों के आने-जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान को केन्द्रित कर दिया जाय। कहीं से लौट कर फिर यहीं आ जाना है, क्योंकि यही वह खूँटी है जिससे मन बंधा हुआ है। इस प्रक्रिया में प्रायः मुंह में राल भर जाता है। यदि उसे निगल जाने की इच्छा हुई तो नोट करें— इच्छा हो रही है, इच्छा हो रही है, यदि निगल जाय तो 'निगल रहा हूँ', 'निगल रहा हूँ' यदि थूक देने का विचार आया तो 'थूक रहा हूँ', 'थूक रहा हूँ' और तब फिर साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान चला जाय। यदि गर्दन झुकाने की इच्छा हो तो 'इच्छा हुई', 'इच्छा हुई', झुकाया तो झुकाया, झुकाया। यदि गर्दन सीधी करने की इच्छा हुई तो 'इच्छा हुई', 'इच्छा हुई', गर्दन सीधी कर ली तो 'सीधी हुई', 'सीधी हुई'। झुकाने और सीधा करने की क्रिया बहुत धीरे धीरे होनी चाहिए। फिर तुरन्त अपने आप मन साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यानस्थ हो जाय।

चूंकि साधक को एक ही आसन से देर तक ध्यान में

बैठना होता है यह बहुत स्वाभाविकतया संभव है कि वह अपने शरीर में थकान का या अंगों मे कड़ापन (Stiffness) का अनुभव करे। ऐसी अवस्था में जहां थकान का बोध हो रहा है वहाँ ध्यान ले जाकर 'थका', 'थका' या 'कड़ा', 'कड़ा' का ध्यान करे—स्वाभाविक रूप मे न तो बहुत धीरे धीरे, न झटके में। ऐसा करते ही थकान या कड़ापन का भाव स्वय धीरे धीरे गायब हो जायगा। ऐसा भी हो सकता है कि वह थकान या कड़ापन बढ जाय और यहा तक बढ़ जाय कि असह्य हो जाय। ऐसी अवस्था में साधक चाहने लगता है कि आसन बदल दिया जाय और तब उसे मन ही मन अवलोकन करना चाहिए चाह रहा हू, चाह रहा हूँ, और तब अपना आसन धीरे धीरे साथ ही प्रत्येक स्थिति का क्रमशः अवलोकन करते हुए शनैः शनैः बदलना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि हाथ उठाना चाहता है तो मन ही मन नोट करे 'चाहता हूँ' 'चाहता हू', उठाये तो 'उठा रहा हूँ', 'उठा रहा हूँ' फैलावे तो 'फैला रहा हूं', 'फैला रहा हूँ', झुकाये या मोड़े तो 'मोड़ रहा हूँ', 'मोड़ रहा हूँ', गिराये तो 'गिरा रहा हू' 'गिरा रहा हू', पृथ्वी को स्पर्श करने लगे तो 'छू रहा है' 'छू रहा है'। ऊपर बताये सारे कार्य बहुत ही धीरे धीरे प्रत्येक स्थिति की बारीक से बारीक बात का अवलोकन करते हुए करना चाहिए। अब साधक जब अपना आसन बदल कर सुस्थिर बैठ गया है तो पुनः साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर अपना ध्यान जमा दे। यदि उसके शरीर मे कही गर्मी का बोध हो रहा हो तो उस स्थान पर 'गरम', 'गरम' का ध्यान करते ही गर्मी समाप्त हो जायगी। यदि शरीर के किसी भाग

में खुजली उठ रही है तो उस स्थान विशेष पर मन को टिका कर खुजला रहा है, खुजला रहा है का ध्यान करे, न तो बहुत धीरे धीरे, न बहुत जल्दी जल्दी। यदि वैसा करते खुजली अपने आप मिट जाय तो साधक पुनः साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर अपना ध्यान टिका दे। यदि साधक ऐसा अनुभव करे कि खुजली जा नहीं रही है बल्कि बढती ही जा रही है और असह्य हो रही है और वह उसे खुजलाना ही चाहता है तो उसे अपनी इस इच्छा का अवलोकन करे— 'चाहता हूं' 'चाहता हूं' और बहुत धीरे धीरे अपना हाथ उठाकर उस स्थान को खुजला ले परन्तु प्रत्येक स्थिति का सावधानी के साथ अवलोकन करता जाय— जैसे 'उठा रहा हूँ' 'उठा रहा हूँ', 'छू रहा हूँ' 'छू रहा हूँ', खुजला रहा हूँ, खुजला रहा हूँ। और अब हाथ हटा लेना है तो फिर प्रत्येक स्थिति का सावधानी के साथ नोट करते हुए ही हाथ हटा ले। फिर साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान केन्द्रित कर ले।

भावना के समय यदि शरीर के किसी भाग में दर्द का अनुभव हो रहा हो तो मन को उस स्थान विशेष में टिका कर 'दर्द हो रहा है', 'दर्द हो रहा है', 'पीड़ा हो रही है' 'पीड़ा हो रही है, 'कष्ट हो रहा है', 'कष्ट हो रहा है', का अवलोकन करे। इसी प्रकार यदि थकान अनुभव कर रहा है तो 'थका', 'थका', सिर में चक्कर आ रहा है तो 'चक्कर आ रहा है', 'चक्कर आ रहा है'। ऐसा करते ही साधक यह देखेगा कि दर्द या पीडा या थकान या सिर का चक्कर सब गायब हो गया है। ऐसा भी हो सकता है कि दर्द बढ जाय तो साधक धैर्य के साथ उसे अवलोकन

करता रहे, घबड़ाये नही। यदि वह थोड़ी देर अपनी भावना को बनाये रहा तो दर्द अवश्य मिट जायगा परन्तु फिर भी यदि दर्द नही जा रहा है और असह्य हो रहा है तो वहां से ध्यान हटाकर वह श्वास प्रश्वास के आने-जाने या पेट के उठने-बैठने पर अपना ध्यान जमा दे।

कभी कभी समाधि में थोड़ी प्रगति होने के बाद साधक यह अनुभव करता है कि असह्य पीडा होने लगी है या ऐसा लगता है जैसे दम घुट रहा हो, या कोई छूरी चुभो रहा है या सूई चुभो रहा है या उसके शरीर पर छोटे छोटे कई कीड़े घूम रहे है। कभी कभी जोर की खुजलाहट होगी, घोर सर्दी या भयंकर गर्मी का बोध होगा। साधक जैसे ही अपना ध्यान बंद कर देगा ये अनुभव भी अपने आप ही समाप्त हो जायेगे। परन्तु फिर जैसे ही ध्यान करने लगेगा कि ऐसे बोध फिर आ जुटेंगे। सच तो यह है कि ये कष्ट-बोध न तो कुछ भी महत्वपूर्ण होते है और न कोई बीमारी ही है। ये तो शरीर में पहले ही से विद्यमान रहते है परन्तु चूंकि हम कई और भी महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न होते है ये छोटे छोटे दोष छिपे पड़े रहते है। ध्यान के समय ये जाग उठते है क्योंकि मन की शक्ति प्रबल हो जाती है और इसी लिए साधक उन्हें जान पाता है और पकड़ पाता है और उन पर विजय पाने की स्थिति में है। यदि साधक अपने ध्यान में संलग्न रहे तो वह निश्चय ही इन अप्रिय बोधों पर विजयी होगा। और तब फिर उस पर ये हाबी नही होने पायेंगे।

यदि साधक अपने शरीर को झुलाना चाहता है तो

पहले चाहता हूँ, चाहता हूँ, और फिर दोलायित होते समय दोल रहा है, दोल रहा है की भावना करे। कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि साधक जब भावना में बैठा हुआ है तो उसका शरीर स्वयं दायें-बायें या आगे-पीछे दोलायित होने लगे। इससे उसे उद्विग्न या चिन्तित नहीं होना चाहिए। और न तो इससे उसे प्रसन्न ही होना चाहिए या चाहना चाहिए कि यह होता रहे। उसे स्मरण रखना चाहिए कि इस दोलायन पर ध्यान जाते ही यह स्वतः बन्द हो जायगा। उसे ऐसी स्थिति में मन ही मन दोल रहा है, दोल रहा है, अवलोकन करना चाहिए—न तो बहुत धीरे धीरे, न बहुत जल्दी जल्दी और वह देखेगा कि कुछ देर बाद यह दोलायन अपने आप समाप्त हो जायगा। यदि फिर भी दोलायन समाप्त न होकर और तेजी पकड़ ले तो साधक को चाहिए कि किसी दिवाल से पीठ टिका ले या अपने बिस्तर पर लेट जाय और फिर अपने ध्यान में संलग्न हो जाय। शरीर में यदि कँपकपी या थरथराहट हो जाय तब भी इसी प्रक्रिया का आधार लेना चाहिए। ध्यान जैसे जैसे प्रगाढ होता जायगा तो कभी कभी गुदगुदी का अनुभव करेगा या रीढ के भीतर से या सारे शरीर में एक शीतल धारा के प्रवाह क अनुभव करेगा। यह और कुछ नही प्रीति का प्रवाह है जो ध्यान की सफल प्रगति में होता ही है। साधक जब ध्यान में बैठा होगा तो रचमात्र की हल्की आवाज से भी वह चमत्कृत हो जायगा। इसका कारण यह है कि अब साधक 'फस्सो' स्पर्शानुभूति का विशेष अनुभव करता रहेगा। यदि ध्यान में शरीर की स्थिति बदलने की इच्छा

हो तो बदलने की प्रत्येक अवस्था को वह मन ही मन देखता जाय और धीरे धीरे सारी प्रक्रिया के एक एक तफसील या ब्योरे को अवलोकन करता हुआ शरीर के अंगों को सुविधानुसार यथारुचि बदल ले। हाँ, यह बहुत ही धीरे धीरे होना चाहिए ताकि ध्यान में उस कारण किसी प्रकार का विघ्न या विक्षेप न आवे।

ध्यान के समय यदि प्यास का अनुभव होने लगे तो साधक नोट करे 'प्यास लगी है', 'प्यास लगी है'। अब वह यदि खड़ा होना चाहता है तो 'चाहता हूँ' 'चाहता हूँ'। तब खड़ा होने की प्रत्येक क्रिया के एक एक ब्योरे को वह नोट करता जाय और खड़ा हो रहा हूँ, खड़ा हो रहा हूँ, की भावना करता रहे। खडे होकर जब वह सामने देखने लगे तो देख रहा हूँ, देख रहा हूँ, को मन ही मन नोट करे और अब यदि वह आगे चलना चाहता है तो पहले चाहता हूँ, चाहता हूँ, और आगे बढे तो 'चल रहा हूँ' 'चल रहा हूँ' और प्रत्येक कदम कदम पर चलने की क्रिया को नोट करता जाय। चलते समय चलने की प्रत्येक क्रिया को भली भाति नोट करता रहे—'उठा रहा हूँ' 'रख रहा हूँ' और तब फिर 'उठा रहा हूँ', आगे बढा रहा हूँ और रख रहा हूँ अथवा उठा, चला, रखा। अब जब वह पानी के घड़े को या नल को देखे तो भावना करे 'देख रहा हूँ', 'देख रहा हूँ', रुक जाय तो 'रुक गया' 'रुक गया', हाथ फैलाये तो 'फैला रहा हूँ' 'फैला रहा हूँ' ग्लास या कप छू लिया तो 'छू लिया' 'छू लिया', पानी में ग्लास को डुबाया या पानी

उसमें डाला तो 'डुबा रहा हूँ' 'डुबा रहा हूँ' 'ढाल रहा हूं' 'ढाल रहा हूँ' जब हाथ ग्लास को ओठों के पास ले आवे तो ला रहा हूँ, ला रहा हूँ; जब ग्लास अधरों को छूने लगे तो 'छू रहा है' 'छू रहा है', पानी का स्पर्श पाकर जब शीतलता का अनुभव करे तो 'ठंढा' 'ठंढा', जब पानी पीने लगे तो 'पी रहा हूँ' 'पी रहा हूँ' ग्लास रखने लगे तो 'रख रहा हूँ' 'रख रहा हूँ' हाथ हटाने लगे तो हटा रहा हूँ, हटा रहा हूँ, शरीर का कोई अंग छू जाय तो छू रहा हूँ, छू रहा हूँ और अब पानी पी कर जब लौटने की इच्छा हो तो 'इच्छा हो रही है', 'इच्छा हो रही है' और ध्यान के स्थान को जा रहा है तो 'जा रहा हूँ' 'जा रहा हूँ' अपने स्थान पर पहुँच कर ठहर जाय तो 'ठहर गया' 'ठहर गया' और यदि वहाँ कुछ देर खड़े रहना चाहे तो साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान जमा ले। अब यदि वह बैठ जाना चाहे तो 'चाहता हूँ' 'चाहता हूँ'। बैठने के स्थान तक जा रहा है तो 'जा रहा हूँ' जा रहा हूँ'; पहुँच जाय तो 'पहुँच गया' 'पहुँच गया'; बैठने के पहले बैठने की इच्छा को नोट करे, चाहता हूँ' 'चाहता हूँ', फिर 'बैठ रहा हूँ' 'बैठ रहा हूँ', अब धीरे धीरे बैठने की सारी प्रक्रिया को नोट करते हुए बैठ जाय। हाथ पैर को अपनी अपनी जगह लाने की प्रत्येक प्रक्रिया को सावधानी से भली भाँति नोट करता जाय। बैठ जाने पर अब वह सास के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान जमा ले।

साधक जब लेटना चाहे तो 'चाहता हूँ' 'चाहता हूँ', की भावना करे और लेटने तक की प्रक्रिया के एक एक ब्योरे या

तफसील पर ध्यान रखे, जैसे—'उठा रहा हूँ, उठा रहा हूँ', पैरों को 'फैला रहा हूँ, फैला रहा हूँ', 'झुक रहा हूँ, झुक रहा हूँ', आदि। लेट जाय तो 'लेट रहा हूँ, लेट रहा हूँ', तकिये से सिर छू जाय तो 'छू रहा है, छू रहा है'। फिर शरीर के एक-एक अंग को लेटने की स्थिति में यथास्थान रखते हुए उसपर ध्यान रखे। ये सारे कार्य धीरे धीरे होने चाहिए और पूरी तरह लेट जाय तो फिर साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान टिका देना चाहिए। यदि लेटे लेटे साधक दर्द का अनुभव करे, थका थका अनुभव करे, गर्मी का अनुभव करे या खुजलाहट का अनुभव करे तो इन में से एक एक की स्थिति को मन ही मन नोट करे। राल घूंट जाने या थूक फेंकने या दर्द का अनुभव करते हुए विचारों, भावों, चिन्तनों इत्यादि का तथा हाथ, पैर और शरीर के हिलने डुलने का उसी भाव से नोट करता रहे जिस भाव से ध्यान में बैठने की स्थिति में करता है। यदि कोई विशेष बात भावना को केन्द्री-भूत करने के लिए नहीं है तो साधक तुरन्त साँस के आने-जाने या पेट के उठने-बैठने पर ध्यान केन्द्रित कर ले। तब यदि उसे नींद आने लगे तो 'नींद आ रही है, नींद आ रही है', यदि आँखें झिपने लगें तो 'झिप रही है, झिप रही है', नोट करे। यदि साधक अपने ध्यान में एकाग्रता सिद्धकर ले तो वह देखेगा नींद या आँखें झिपने की स्थिति का नोट करते ही नींद या झपकी अपने आप समाप्त हो जायगी और तुरन्त उसे एक विचित्र ताजगी का अनुभव होगा। फिर वह तुरन्त साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर अपना ध्यान

केन्द्रित कर लेगा। यदि वह नींद या झपकी पर विजय नहीं प्राप्त कर पाये तो भी उसे अपने ध्यान को चालू रखना चाहिए जबतक उसे नींद न आ जाय।

नींद 'भवंग-संतान' के सिवा और है क्या ? या यह जन्म के समय की पहली चेतन-स्थिति और मृत्यु के समय की अन्तिम चेतन-स्थिति ही तो है। चेतना की यह स्थिति बड़ी ही दुर्बल होती है और किसी भी पदार्थ को जान नहीं सकती। जाग्रत अवस्था में भी भवंग की यह स्थिति देखने सुनने सोचने के क्षणों के बीच बीच में भी बराबर आया करती है। परन्तु चूंकि भवंग की यह स्थिति कुछ क्षण ही रहती है इसी लिए यह स्पष्टतः पकड़ में नही आती। नींद में भवंग की यह स्थिति देर तक ठहरती है, इसीलिए स्पष्ट हो कर पकड़ में आ जाती है। नींद में किसी प्रकार का चिन्तन या ध्यान संभव नहीं है।

जागते ही साधक जागने के प्रथम क्षण से सति का अभ्यास शुरू कर दे—जाग रहा हूँ, जाग रहा हूँ। आरम्भ में ही साधक के लिए जागते ही प्रथम क्षण से ही सति का अभ्यास करना कठिन होगा—जिस क्षण उसे याद आ जाय तभी से शुरू कर दे। उदाहरण के लिए जिस क्षण उसे चिन्तन का ध्यान आये, चिंतन कर रहा हूँ चिंतन कर रहा हूँ और फिर वह साँस आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान टिका दे। शरीर के एक एक अंग के हाथ पैर आदि के मोडने, घुमाने, झुकाने, फैलाने आदि का नोट करना चाहिए। यदि वह समय के बारे में सोच रहा है तो 'सोच

रहा हूँ, सोच रहा हूँ', यदि वह उठना चाहता है तो 'चाहता हूँ, चाहता हूँ', यदि वह उठने के लिए शरीर को साध रहा है तो 'साध रहा हूँ, साध रहा हूँ', और जैसे जैसे धीरे धीरे वह अपना शरीर उठा रहा है, 'उठा रहा हूँ, उठा रहा हूँ', बैठने की स्थिति में आ जाय तो 'बैठ रहा हूँ, बैठ रहा हूँ', और यदि वह बैठने की स्थिति में कुछ देर तक रहना चाहता है तो तुरन्त उसे साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान टिका देना चाहिए।

यदि साधक अपना हाथ मुँह धोना चाहता है या स्नान करना चाहता है तो प्रत्येक स्थिति को सावधानी के साथ क्रमानुसार पूरे ब्योरे या तफसील को मन ही मन नोट करता जाय, जैसे 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ', फैला रहा हूँ, फैला रहा हूँ', लोटा उठाते समय 'उठा रहा हूँ, उठा रहा हूँ', बाल्टी में उसे डुबाते समय 'डुबा रहा हूँ, डुबा रहा हूँ', उसे निकालते हुए 'निकाल रहा हूँ, निकाल रहा हूँ', शरीर पर ढालते समय 'ढाल रहा हूँ, ढाल रहा हूँ', जल के स्पर्श की शीतलता का अनुभव करते हुए 'ठंढा, ठंढा, शरीर को रगड़ते या मलते हुए—'रगड़ रहा हूँ, रगड़ रहा हूँ',—इसी प्रकार प्रत्येक क्रिया की एक एक बात को मन ही मन नोट करता जाय। इसी प्रकार कपड़े पहनते हुए, बिस्तर बिछाते हुए, दरवाजा बंद करते समय या खोलते समय या किसी चीज को लेते या देते समय वह उस क्रिया के एक एक ब्योरे पर क्रमानुसार पूरा पूरा ध्यान देता रहे। इसी प्रकार भोजन करते समय भी एक एक तफसील पर क्रमानुसार ध्यान रखेगा—जैसे जब वह भोजन की ओर देखे तो 'देख

रहा हूँ, देख रहा हूँ', भोजन को अपने हाथ से परोसे तो 'परोस रहा हूँ, परोस रहा हूँ', भोजन जब हाथ से मुँह तक पहुँचे तो 'पहुँच रहा है, पहुँच है', भोजन के लिये जब गर्दन झुके तो 'झुक रहा है, झुक रहा है, जब भोजन का कौर ओठों को छू ले तो 'छू रहा है, छू रहा है', जब कौर मुंह में आ गया तो 'आ गया है, आ गया है', भोजन को चबाने के लिए जब मुंह को बंद करे तो 'बंद है, बद है', जब हाथ पुनः थाली की ओर जाय तो 'जा रहा है, जा रहा है', हाथ थाली को छुए तो 'छू रहा है छू रहा है', गर्दन को सीधी करे तो 'सीधा कर रहा हूँ, सीधा कर रहा हू', चबाने लगे तो 'चबा रहा हूँ, चबा रहा हूँ', स्वाद को जाने तो 'जान रहा हूँ, जान रहा हूँ', भोजन को निगलने लगे तो 'निगल रहा हूँ, निगल रहा हूँ', भोजन अन्दर जाते हुए आतों को छुए तो 'छू रहा है, छू रहा है'। इस प्रकार प्रत्येक कौर के साथ वह प्रत्येक क्रिया को नोट करता जाय जब तक वह पूरा भोजन न कर ले। आरम्भ में कई छूट हो जायगी परन्तु साधक को इससे विचलित नहीं होना चाहिए। उसे अपने उद्देश्य की संसिद्धि में इस अभ्यास में पूर्णतः तत्पर रहना चाहिए। जैसे जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा छूट कम होती जायगी और आगे बढने पर तो जिन ब्योरों की चर्चा ऊपर की गयी है उससे भी अधिक विस्तार में वह ब्योरे को नोट करता जायगा।

ध्यान में प्रगति

एक दिन और एक रात इस अभ्यास को कर लेने के अनन्तर साधक यह अनुभव करेगा कि उसका ध्यान विशेष

प्रगाढ़ और सघन होता जा रहा है और वह साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर अपना ध्यान आसानी से केन्द्रित किये रह सकता है। यदि वह बैठने की स्थिति में है तो पेट के उठने-गिरने और अपने बैठने को भी मन ही मन नोट करता जाय—'उठा, गिरा, बैठा', उठा, गिरा, बैठा।' यदि वह लेटे हुए है तो मन ही मन नोट करे—उठा, गिरा, सोया, उठा, गिरा, सोया।' यदि वह इन तीन बिन्दुओं पर एक साथ मन को एकाग्र करने मे कठिनाई का अनुभव करता है तो साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ही ध्यान टिकाये।

जब साधक अपने शरीर की किसी क्रिया की तफसील पर ध्यान लगाये हुए है तो उसे सुनने या देखने की क्रिया में संलग्न नहीं होना है। साँस के आने-जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान जब है और उसी समय कहीं कोई दृश्य देखने की ओर दृष्टि चली गई तो तुरत नोट करना चाहिए 'देख रहा हूँ' 'देख रहा हूँ'। और फिर उसे साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान टिका देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति उसके दृष्टिपथ में आ जाय तो 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ' को दो तीन बार नोट कर ले, फिर साँस के आने-जाने या पेट के उठने-गिरने पर ध्यान टिका ले। यदि कोई ध्वनि या शब्द सुनाई दे तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', को दो-तीन बार नोट कर ले और तब साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान टिका ले। यदि जोर की ध्वनि जैसे कुत्ते के भूँकने, जोर जोर से बोलने, जोर जोर से गाने की ध्वनि सुनता है तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ' दो या तीन बार नोट कर ले और

तब अपने ध्यान को साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर जमा ले। यदि वह उन शब्दों के सुनने में लग जायगा तो संभव है कि उन उन वस्तुओं में उलझ जाय और तब फिर साँस के आने-जाने या पेट के उठने गिरने पर उसका ध्यान न जम सके। इसी प्रकार 'किलेशों'—मन को क्षुब्ध करनेवाले विकार जनमते और बढते है। यदि ऐसे विचार आवें तो वह तुरत दो तीन बार नोट करे—'विचार कर रहा हूँ', 'विचार कर रहा हूँ' और फिर साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान टिकाये। यदि शरीर के हिलने डुलने की किसी क्रिया को नोट करने में भूल हो जाय तो 'भूल गया' 'भूल गया' मन ही मन नोट करे और तब अपने नियमित ध्यान में संलग्न हो जाय। कभी कभी ध्यान की प्रगाढावस्था में यह अनुभव करेगा कि साँस की गति धीमी हो गई है और पेट के उठने गिरने की गति भी पकड़ में नहीं आ रही है ऐसी अवस्था में यदि वह बैठा हुआ है तो उसे 'बैठा हूँ' छू रहा हूँ ;बैठा हूँ छू रहा हूँ, पर ध्यान टिकाना चाहिए या यदि लेटा हुआ है तो 'लेटा हुआ हूँ' छू रहा हूँ' पर ध्यान लगाना चाहिए। 'छू रहा है, छू रहा है', का ध्यान करते समय किसी स्थान विशेष का ध्यान न कर विभिन्न भागों का स्थानों का ध्यान अपेक्षित है। कम से कम तीन या चार स्थान तो होने ही चाहिए।

इस प्रशिक्षण में कुछ समय लगा चुकने पर साधक के मन में ऐसा भाव उठ सकता है कि यथेष्ट उन्नति नहीं हो रही है और उसे सुस्ती का भाव आ सकता है। ऐसे समय 'सुस्ती' 'सुस्ती' की भावना करे। इतना ही नही, सति (स्मृति) समाधि और ज्ञान

(अन्तर्दृष्टि) में पर्याप्त उन्नति उपलब्ध करने के पूर्व साधक के मन में इस प्रशिक्षण की उपयोगिता और सचाई के बारे में भी सन्देह उठ सकता है। ऐसी स्थिति में वह मन ही मन भावना करे—'संदेहमय, संदेहमय', कभी-कभी वह उत्तम परिणाम की आशा-अपेक्षा भी करेगा—ऐसे समय 'आशा कर रहा हूँ, आशा कर रहा हूँ' की भावना करे। कभी-कभी वह अपने प्रशिक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया को याद करने की चेष्टा करेगा—ऐसे समय 'स्मरण कर रहा हू, स्मरण कर रहा हू' या सोच रहा हूँ सोच रहा हूँ' की भावना करे। कभी-कभी वह सोचने लगेगा कि उसके ध्यान का विषय, नाम है या रूप। ऐसे समय में मन ही मन भावना करे 'जाँच रहा हूँ', जाँच रहा 'हूँ। कभी-कभी वह अपनी साधना से ऊब कर उदास हो जायगा, ऐसे अवसर पर 'उदास' 'उदास' की भावना करे। कभी-कभी अपनी साधना की सफलता पर उसे हर्ष और प्रसन्नता का अनुभव होगा, ऐसे अवसर पर 'प्रसन्न' 'प्रसन्न' की भावना करे। सारांश कि साधक अपने मन की प्रत्येक अवस्था को सावधानी के साथ देखता रहे और एक-एक को नोट करता रहे। फिर साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान टिका ले। प्रातः जागने से रात के सोने के समय तक साधना का समय है। इस प्रकार साधक जब तक जागता रहे पूर्णतः सावधान और प्रमाद रहित रहे। इसमें किसी प्रकार की शिथिलता न आने पावे। साधना के परिपक्व हो जाने पर साधक यह स्वयं अनुभव करेगा कि उसे अब नींद की जरूरत नहीं है और वह रात दिन लगातार साधना करता रहेगा, अविच्छिन्न और अखण्ड भाव से।

भले या बुरे जैसे भी विचार मन में उठे साधक प्रत्येक मनः-स्थिति को अच्छी तरह परखे और उसे मन ही मन अवलोकन करे। शरीर की जो भी क्रिया हो हल्की या बड़ी, साधक प्रत्येक क्रिया को मन ही मन अवश्य अप्रमादी बन कर नोट करता जाय। सुखद या दुःखद मन की जो भी तरंगें हों साधक उसे अत्यन्त सावधानी के साथ नोट करता रहे। यदि कोई खास बात सोचने को न हो तो साधक साँस के आने जाने या पेट के उठने गिरने पर ध्यान टिका दे। यदि किसी काम से उसे बाहर जाना है तो साधक कदम कदम पर 'जा रहा हूँ' 'जा रहा हूँ' की भावना करे। टहलने का व्यायाम करते समय साधक प्रत्येक कदम पर तीन प्रकार से भावना करे--'उठाया' 'बढाया' 'गिराया'। साधक इस प्रकार अहोरात्र साधना में लगा रहे तो उसका ध्यान इतना जाग्रत, प्रखर और प्रगाढ़ हो जायगा कि 'उदय-व्यय' नामक विपश्यना की चतुर्थ ज्ञान को उपलब्धि तुरत हो जायगी और विपस्सना ज्ञान की परम और चरम अवस्था की भी उपलब्धि हो जायगी।

